जैन, बौद्ध और गीता दर्शन में मोक्ष का स्वरूप एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सागरमल जैन

जैन तत्व मीमांसा के अनुसार संवर के द्वारा कर्मों के आगमन का निरोध हो जाने पर और निर्जरा के द्वारा समस्त पुरातन कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा को जो निष्कर्म शुद्ध अवस्था होती है उसे मोक्ष कहा जाता है।[1] कर्म-फल के अभाव में कर्म-जनित आवरण या बंधन भी नहीं रहते और यही बंधन का अभाव ही मुक्ति है।[2] वस्तुतः मोक्ष आत्मा की शुद्ध स्वरूपावस्था है।[3] बंधन आत्मा की विरूपावस्था है और मुक्ति आत्मा की स्वरूपावस्था है। अनात्मा में ममत्व, आसक्ति रूप आत्माभिमान का दूर हो जाना यही मोक्ष है" और यही आत्मा की शुद्धावस्था है। बन्धन और मुक्ति की यह समग्र व्याख्या पर्याय दृष्टि का विषय है। आत्मा की विरूप पर्याय बन्धन है और स्वरूप पर्याय मोक्ष है। पर पदार्थ, पुद्गल, परमाणु या जड़ कर्म वर्गणाओं के निमित्त आत्मा में जो पर्यायें उत्पन्न होती हैं और जिनके कारण पर में आत्म-भाव (मेरापन) उत्पन्न होता है, यही विरूप पर्याय है, परपरिणति है, स्व की पर में अवस्थिति है, यही बन्धन है और इसका अभाव ही मुक्ति है। बन्धन और मुक्ति दोनों एक ही आत्म-द्रव्य या चेतना की दो अवस्थाएँ मात्र हैं, जिस प्रकार स्वर्ण मुकुट और स्वर्ण कुंडल स्वर्ण की ही दो अवस्थाएँ हैं। लेकिन यदि मात्र, विशुद्ध तत्व दृष्टि या निश्चय नय से विचार किया जाय तो बंधन और मुक्ति दोनों की व्याख्या संभव नहीं है क्योंकि आत्मतत्व स्वरूप का परित्याग कर परस्वरूप में कभी भी परिणत नहीं होता। विशुद्ध तत्व दृष्टि से तो आत्मा नित्यमुक्त है। लेकिन जब तत्व की पर्यायों के संबंध में विचार प्रारम्भ किया जाता है तो बंधन और मुक्ति की संभावनाएँ स्पष्ट हो जाती हैं क्योंकि बन्धन और मुक्ति पर्याय अवस्था में ही संभव होती है। मोक्ष को तत्व माना गया है, लेकिन वस्तुतः मोक्ष बंधन के अभाव का ही नाम है। जैनागमों में मोक्ष तत्व पर तीन दृष्टियों से विचार किया गया है—१. भावात्मक दृष्टिकोण, २. अभावात्मक दृष्टिकोण, ३. अनिर्वचनीय दृष्टिकोण।

मोक्ष पर भावात्मक दृष्टिकोण से विचार:—जैन दार्शनिकों ने मोक्षावस्था पर भावानात्मक दृष्टिकोण से विचार करते हुए उसे निर्बाध अवस्था कहा है।[5] मोक्ष में समस्त बाधाओं के अभाव के कारण आत्मा के निजगुण पूर्ण रूप से प्रकट हो जाते हैं। मोक्ष, बाधक तत्वों की अनुपस्थिति और पूर्णता का प्रकटन है। आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्ष की भावात्मक दशा का चित्रण करते हुए उसे शुद्ध, अनन्त चतुष्टययुक्त, अक्षय, अविनाशी, निर्बाध, अतीन्द्रिय, अनुपम, नित्य, अविचल, अनालम्ब कहा है।[6] आचार्य उसी ग्रंथ में आगे चलकर मोक्ष में निम्न बातों की विद्यमानता की सूचना करते हैं।[7] १. पूर्णज्ञान, २. पूर्णदर्शन, ३. पूर्णसौख्य, ४. पूर्णवीर्य, ५. अमूर्तत्व, ६. अस्तित्व और ७. सप्रदेशता। आचार्य कुन्दकुन्द ने मोक्ष दशा के जिन सात भावात्मक तथ्यों का उल्लेख किया है, वे सभी भारतीय दर्शनों को स्वीकार नहीं हैं। वेदान्त को स्वीकार नहीं

१. कृत्स्न कर्मक्षयान् मोक्षः—तत्वार्थसूत्र, १०१
२. बन्ध वियोगो मोक्षः—अभिधान राजेन्द्र खंड ६, पृष्ठ ४३१
३. मुक्खो जीवस्स सुद्ध रूपस्स—वही खंड ६, पृष्ट ४३१
४. तुलना कीजिये—(अ) आत्मा मीमांसा (दलसुखभाई) पृष्ठ ६६-६७
   (ब) ममेति बध्यते जन्तुर्ममभेति प्रमुच्यते—गरुड़ पुराण
५. अव्वाबाहं अवत्थाणं—:व्याबाधावर्जितभवस्थानम्-अवस्थितिः जीवस्यासौ मोक्ष इति।—अभिधानराजेन्द्र खंड ६, पृष्ठ ४३१
६. नियमसार १७६-१७७
७. विज्जदि केवलणाणं, केवलसोक्खं च केवलविरियं।
   केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थितं सप्पदेसत्तं ।।—नियमसार १८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, सांख्य सौख्य एवं वीर्य को और न्याय वैशेषिक ज्ञान और दर्शन को भी अस्वीकार कर देते हैं। बौद्ध शून्यवाद अस्तित्व का भी विनश कर देता है और चार्वाक दर्शन मोक्ष की धारणा को भी समाप्त कर देता है। वस्तुतः मोक्ष को अनिर्वचनीय मानते हुए भी विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं के निराकरण के लिये ही मोक्ष की इस भावात्मक अवस्था का चित्रण किया गया है। भावात्मक दृष्टि से जैन विचारणा मोक्षावस्था में अनन्त चतुष्टय की उपस्थिति पर बल देती है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सौख्य और अनन्त शक्ति को जैन विचारणा में अनन्त चतुष्टय कहा जाता है। बीजरूप में यह अनन्त चतुष्टय सभी जीवात्माओं में उपस्थित है, मोक्ष दशा में इनके अवरोधक कर्मों का क्षय हो जाने से ये गुण पूर्ण रूप में प्रकट हो जाते हैं। ये प्रत्येक आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं जो मोक्षावस्था में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो जाते हैं। अनन्त चतुष्टय में अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति और अनन्त सौख्य आते हैं। लेकिन अष्टकर्मों के प्रहाण के आधार पर सिद्धों के आठ गुणों की मान्यता भी जैन विचारणा में प्रचलित है। १. ज्ञानावरणीय कर्म के नष्ट हो जाने से मुक्तात्मा अनन्त ज्ञान या पूर्ण ज्ञान से युक्त होता है। २. दर्शनावरण कर्म नष्ट हो जाने से अनन्त दर्शन से संपन्न होता है। ३. वेदनीय कर्म के क्षय हो जाने से विशुद्ध अनश्वर आध्यात्मिक सुखों से युक्त होता है। ४. मोह कर्म के नष्ट हो जाने से यथार्थ दृष्टि (क्षायिक सम्यक्त्व) से युक्त होता है। मोह कर्म के दर्शन मोह और चारित्र मोह ऐसे दो भाग किए जाते हैं। दर्शन मोह के प्रहाण से यथार्थ और चारित्र मोह के क्षय से यथार्थ चारित्र (क्षायिक चारित्र) का प्रकटन होता है लेकिन मोक्ष दशा में क्रियारूप चारित्र नहीं होता मात्र दृष्टि रूप चारित्र ही होता है। अतः उसे क्षायिक सम्यक्त्व के अंतर्गत ही माना जा सकता है। वैसे आठ कर्मों की ३१ प्रकृतियों के प्रहाण के आधार से सिद्धों के ३१ गुण माने गये हैं, उसमें यथाख्यात चारित्र को स्वतंत्र गुण माना गया है। ५. आयु कर्म के क्षय हो जाने से मुक्तात्मा जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है वह अजर अमर होता है। ६. नामकर्म का क्षय हो जाने से मुक्तात्मा अशरीरी एवं अमूर्त्त होता, है अतः वह इन्द्रिय ग्राह्य नहीं होता है। ७. गोत्र कर्म के नष्ट हो जाने से अगुरुलघुत्व से युक्त हो जाता है। अर्थात् सभी सिद्ध समान होते हैं, उनमें छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच का भाव नहीं होता। ८. अन्तराय कर्म का प्रहाण हो जाने से बाधा रहित होता है अर्थात् अनन्त शक्ति संपन्न होता है।[9] अनन्त शक्ति का यह विचार मूलतः निषेधात्मक ही है। यह मात्र बाधाओं का अभाव है। लेकिन इस प्रकार अष्ट कर्मों के प्रहाण के आधार से मुक्तात्मा के आठ गुणों की व्याख्या की मात्र एक व्यावहारिक संकल्पना ही है। उसके वास्तविक स्वरूप का निर्वचन नहीं है। यह व्यावहारिक दृष्टि से उसे समझने का प्रयास मात्र है। इसका व्यावहारिक मूल्य है। वस्तुतः तो वह अनिर्वचनीय है। आचार्य नेमीचन्द्र गोम्मटसार में स्पष्टरूप से कहते हैं कि सिद्धों के इन गुणों का विधान मात्र सिद्धात्मा के स्वरूप के संबंध में जो एकान्तिक मान्यताएँ हैं, उनके निषेध के लिये हैं।[10] मुक्तात्मा में केवलज्ञान और केवलदर्शन के रूप में ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग को स्वीकार करके मुक्तात्माओं को जड़ मानने वाली वैभाषिक, बौद्धों और न्याय-वैशेषिक की धारणा का प्रतिषेध किया गया है। मुक्तात्मा के अस्तित्व या अक्षयता को स्वीकार कर मोक्ष को अभाव रूप में माननेवाली जड़वादी तथा सौत्रान्तिक बौद्धों की मान्यता का निरसन किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मोक्ष दशा का समग्र भावात्मक चित्रण निषेधात्मक मूल्य ही रखता है। यह विधान भी निषेध के लिये है।

अभावात्मक दृष्टि से मोक्ष तत्व पर विचार:—जैनागमों में मोक्षावस्था का चित्रण निषेधात्मक रूप से भी हुवा है। प्राचीनतम जैनागम आचारांग में मुक्तात्मा का निषेधात्मक चित्रण निम्नप्रकार से प्रस्तुत किया गया है। मोक्षावस्था में समस्त कर्मों का क्षय हो जाने से मुक्तात्मा न दीर्घ है, न ह्रस्व है न वृत्ताकार है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है, न परिमंडल संस्थान वाला है। न वह तीक्ष्ण, वह कृष्ण, नील, पीत, रक्त और श्वेतवर्ण वाला भी नहीं है। वह सुगंध और दुर्गंधवाला भी नहीं है कटु, खट्टा, मीठा, एवं अम्ल रस वाला है। उसमें गुरु, लघु, कोमल, कठोर, स्निग्ध, रूक्ष, शीत एवं उष्ण आदि स्पर्श गुणों का भी अभाव है। वह न स्त्री है न, पुरुष है, न नपुसंक है। इस प्रकार मुक्तात्मा में रस, रूप, वर्ण, गंध और स्पर्श भी नहीं है।[11] आचार्य कुन्दकुन्द नियमसार में मोक्ष दशा का निषेधात्मक चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं "मोक्ष दशा में सुख है, न दुःख है, न पीड़ा है, न बाधा है, न जन्म है, न मरण है, न वहाँ इन्द्रियाँ हैं, न उपसर्ग है, न मोह है, न व्यामोह है, न निद्रा है, न वहाँ चिंता है, न आर्त और रौद्र विचार ही है। वहाँ तो धर्म (शुभ) और शुक्ल (प्रशस्त) विचारों का भी अभाव है।[12]" मोक्षावस्था तो सर्व-संकल्पों का अभाव है।

---

८. कुछ विद्वानों ने अगुरुलघुत्व का अर्थ न हलका न भारी किया है।

९. प्रवचनसारोद्धार द्वार २७६ गाथा १५९३-१५९४

१०. सदसिव संखो मक्कडि बुद्धो णोयाइयो य वेसेसी।
ईसर मंडलि दंसण विदूसणट्ठं कयं एदं॥
—गोम्मटसार (नेमिचन्द्र)

११. से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तँसे, न चउरंसे, न परिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिद्दे, न सुकिल्ले, न सुरभिगन्धे, न दुरभिगन्धे, न तित्ते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न महुरे, न कवखड़े, न मउए, न शुरूए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न निद्धे, न लुक्खे न काऊ, न रूहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे न अन्नहा—से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे।
—आचारांग सूत्र १।५।६।

१२. णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीड़ा व णवि विज्जदे बाहा।
णवि मरणं णवि जणणं, तत्थेव य होई णिव्वाणं॥
णिव इंदिय उवसग्गा णिवमोहो विह्मियो ण णिद्दाय।
णय तिण्हा णेव छुहां, तत्थेव हवदि णिव्वाणं॥
—नियमसार १७८-१७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह बुद्धि और विचार का विषय नहीं है, वह पक्षातिक्रान्त है। इस प्रकार मुक्तावस्था का निषेधात्मक विवेचन उसको अनिर्वचनीय बतलाने के लिये ही है।

मोक्ष का अनिर्वचनीय स्वरूप:––मोक्ष का निषेधात्मक निर्वचन अनिवार्य रूप से हमें उसकी अनिर्वचनीयता की ओर ही ले जाता है। पारमार्थिक दृष्टि से विचार करते हुए जैन दार्शनिकों ने उसे अनिर्वचनीय ही माना है।

आचारांग सूत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है–समस्त स्वर वहाँ से लौट आते हैं अर्थात् ध्वन्यात्मक किसी भी शब्द की प्रवृत्ति का वह विषय नहीं है, वाणी उसका निर्वचन करने में कथमपि समर्थ नहीं है। वहाँ वाणी मूक हो जाती है, तर्क की वहाँ तक पहुँच नहीं है, बुद्धि (मति) उसे ग्रहण करने में असमर्थ है अर्थात् वह वाणी, विचार और बुद्धि का विषय नहीं है। किसी उपमा के द्वारा भी उसे नहीं समझाया जा सकता क्योंकि उसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती, वह अनुपम है, अरूपी सत्तावान है। वह अ-पद कोई पद नहीं है अर्थात् ऐसा कोई शब्द नहीं है जिसके द्वारा उसका निरूपण किया जा सके।[13] उसके बारे में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह अरूप, अरस, अवर्ण, और अस्पर्श है क्योंकि वह इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं है।

गीता में मोक्ष का स्वरूप:––गीता की समग्र साधना का लक्ष्य परमतत्व ब्रह्म अक्षर पुरुष अथवा पुरुषोत्तम की प्राप्ति कहा जा सकता है। गीताकार प्रसंगान्तर से उसे ही मोक्ष, निर्वाण-पद, अव्ययपद, परमपद, परमगति और परमधाम भी कहता है। जैन और बौद्ध विचारणा के समान गीताकार की दृष्टि में भी संसार पुनरागमन या जन्म-मरण की प्रक्रिया से युक्त है जबकि मोक्ष पुनरागमन या जन्म-मरण का अभाव है। गीता का साधक इसी प्रेरणा को लेकर आगे बढ़ता है। (जरामरणमोक्षाय ७,२९) और कहता है––"जिसको प्राप्त कर लेने पर पुनः संसार में नहीं लौटना होता है, उस परमपद की गवेषणा करना चाहिये।[14]" गीता का ईश्वर भी साधक को आश्वस्त करता हुवा यही कहता है कि जिसे प्राप्त कर लेने पर पुनः संसार में आना नहीं होता वही मेरा परमधाम है (स्वस्थान) है। 'परमसिद्धि को प्राप्त हुवे महात्मा मेरे को प्राप्त हो कर दुःखों के घर इस अस्थिर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते हैं। ब्रह्म लोक पर्यन्त समग्र जगत पुनरावृत्ति से युक्त है। लेकिन जो भी मुझे प्राप्त कर लेता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता।[15]" मोक्ष के अनावृत्ति रूप लक्षण को बताने के साथ ही मोक्ष के स्वरूप का निर्वचन करते हुए गीता कहती है "इस अव्यक्त से भी परे अन्य सनातन अव्यक्त तत्व है जो सभी प्राणियों में रहते हुवे भी उनके नष्ट होने पर नष्ट नहीं होता है अर्थात् चेतना पर्यायों, जो अव्यक्त है, उनसे भी परे उनका आधारभूत आत्मतत्व है। चेतना की अवस्थाएँ नश्वर हैं लेकिन उनसे परे रहने वाला यह आत्मतत्व सनातन है, जो प्राणियों में चेतना (ज्ञान) पर्यायों के रूप में अभिव्यक्त होते हुए भी उन प्राणियों तथा उनकी चेतना पर्यायों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता है। उसी आत्मा को अक्षय और अव्यक्त कहा गया है और उसे ही परमगति भी कहते हैं। वही परमधाम भी है, वही परमात्मस्वरूप आत्मा का निज स्थान है, जिसे प्राप्त कर लेने पर पुनः निवर्तन नहीं होता।[16]" उसे अक्षय ब्रह्म परमतत्व स्वभाव (आत्मा की स्वभाव दशा) और अध्यात्म भी कहा जाता है।[17] गीता की दृष्टि में मोक्ष निर्वाण है, परम शान्ति का अधिस्थान है।[18] जैन दर्शनिकों के समान गीता भी यह स्वीकार करती है कि मोक्ष सुखावस्था है। गीता के अनुसार मुक्तात्मा ब्रह्मभूत होकर अत्यन्त सुख (अनन्त सौख्य) का अनुभव करता है।[19] यद्यपि गीता एवं जैन दर्शन में मुक्तात्मा में जिस सुख की कल्पना की गई है वह न ऐन्द्रिय सुख है न वह मात्र दुःखाभाव रूप सुख है। वरन् वह अतीन्द्रिय ज्ञानगम्य अनश्वर सुख है।[20]

बौद्ध दर्शन में निर्वाण का स्वरूप:––भगवान बुद्ध की दृष्टि में निर्वाण का स्वरूप क्या है? यह प्रश्न प्रारंभ से विवाद का विषय रहा है। स्वयं बौद्ध दर्शन के आवन्तर संप्रदायों में भी निर्वाण के स्वरूप को लेकर आत्यंतिक विरोध पाया जाता है। आधुनिक विद्वानों ने भी इस संबंध में परस्पर विरोधी निष्कर्ष निकाले हैं, जो एक तुलनात्मक अध्येता को अधिक कठिनाई में डाल देता है। वस्तुतः इस कठिनाई का मूल कारण पालि निकाय में निर्वाण का विभिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न प्रकार से विवेचन किया जाना है। श्री पुसें[21] एवं प्रोफेसर नलिनाक्ष दत्त[22] ने बौद्ध

---

१३. सव्वेसरा नियट्टंति, तक्क जत्थ न विज्जइ, मई तत्थन गहिया ओए अप्प इट्ठाणस्स खेयन्ने––उवप्प न विज्जए-अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थि।
–आचारांग १।५।६।१७१

तुलना कीजिए––
यतो वाचोनिवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह –तेत्तरीय २।९
न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा –मुण्डक ३।१।८

१४. ततः पदं तत्परिमार्गितव्य यस्मिन् गता न विवर्तन्ति भूयः
–गीताज्ञान ४

१५. (अ) यंप्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। गीता ८।२१
(ब) यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। गीता १५।६।
(स) मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नाप्नुवन्ति महात्मानं संसिद्धि परमां गताः।
गीता ८।१५

१६. गीता–८।२०।२१

१७. अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावो हेयात्ममुच्यते। –गीता ८।३

१८. शान्तिं निर्वाणपरमां––गीता ६।१५

१९. सुखेन ब्रह्म संस्पर्शमत्यन्तं सुखमरनुत्ते। गीता ६।२८

२०. सुखमात्यन्तिकं यत्तबुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। गीता ६।२१

२१. देखिये–इन साईक्लोपेडिया आफ इथिक्स एण्ड रीलिजियन।

२२. आस्पेक्टस् आफ महायान इन रिलेशन टु हीनयान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वाण के संबन्ध में विद्वानों के दृष्टिकोणों को निम्न रूप से वर्गीकृत किया है:—

१. निर्वाण एक अभावात्मक तथ्य है।
२. निर्वाण अनिर्वचनीय अव्यय अवस्था है।
३. निर्वाण की बुद्ध ने कोई व्याख्या नहीं दी है।
४. निर्वाण भावात्मक; विशुद्ध एवं पूर्ण चेतना की अवस्था है।

बौद्ध दर्शन के अवान्तर प्रमुख सम्प्रदायों का निर्वाण के स्वरूप के संबंध में भिन्न प्रकार से दृष्टि भेद है—

१. **वैभाषिक संप्रदाय** के अनुसार निर्वाण संस्कारों या संस्कृत धर्मों का अभाव है क्योंकि संस्कृत धर्मता ही अनित्यता है, यही धर्मों का बन्धन है, यही दुःख है, लेकिन निर्वाण तो दुःख निरोध है, बन्धनाभाव है और इसलिये वह एक असंस्कृत धर्म है और असंस्कृत धर्म के रूप में उसकी भावात्मक सत्ता है। वैभाषिक मत में निर्वाण के स्वरूप को अभिधर्म कोष व्याख्या में निम्न प्रकार से बताया गया है "निर्वाण नित्य, असंस्कृत स्वतंत्र सत्ता, पृथक्मत, सत्य पदार्थ द्रव्य सत् है।"[23] निर्वाण में संस्कार या पर्यायों का अभाव होता है लेकिन यहां संस्कारों के अभाव का अर्थ अनस्तित्व नहीं है। वरन् एक भावात्मक अवस्था ही है। निर्वाण असंस्कृत धर्म है। प्रो० शरवात्स्की[24] ने वैभाषिक निर्वाण को अनन्त मृत्यु कहा है। उनके अनुसार निर्वाण आध्यात्मिक अवस्था नहीं है, वरन् चेतना एवं क्रिया शून्य जड़ अवस्था है। लेकिन श्री एस० के० मुकर्जी प्रो० नलिनाक्ष दत्त[25] और प्रो० मूर्ति[26] ने शरवात्स्की के इस दृष्टिकोण का विरोध किया है। इन विद्वानों के अनुसार वैभाषिक निर्वाण निश्चित् रूप से एक भावात्मक अवस्था है। जिसमें यद्यपि संस्कारों का अभाव होता है लेकिन फिर भी उसकी असंस्कृत धर्म के रूप में भावात्मक सत्ता होती है। वैभाषिक निर्वाण में चेतना का अस्तित्व होता है या नहीं है? यह प्रश्न भी विवादास्पद है। प्रो० शरवात्स्की निर्वाण दशा में चेतना का अभाव मानते हैं. लेकिन प्रो० मुकर्जी[27] इस संबन्ध में एक परिष्कारित दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार यशोमित्र की अभिधर्मकोष की टीका के आधार पर निर्वाण की दशा में विशुद्ध मानस या चेतना रहती है। विद्वतवर्य बलदेव उपाध्याय ने बौद्ध दर्शन मीमांसा में वैभाषिक बौद्धों के एक तिब्बतीय उपसंप्रदाय का वर्णन किया है। जिसके अनुसार निर्वाण की अवस्था में केवल वासनात्मक एवं क्लेशोत्पादक (सास्रव) चेतना का ही अभाव होता है। इसका तात्पर्य यह है कि निर्वाण की दिशा में अनास्रव विशुद्ध चेतना का अस्तित्व बना रहता है।[28] वैभाषिकों के इस उपसंप्रदाय का यह दृष्टिकोण जैन विचारणा के निर्वाण के अति समीप आ जाता है। क्योंकि यह भी जैन विचारणा के समान निर्वाणावस्था में सत्ता (अस्तित्व) और चेतना (ज्ञानोपयोग एवं दर्शनोपयोग) दोनों को स्वीकार करता है। वैभाषिक दृष्टिकोण निर्वाण की संस्कारों की दृष्टि से अभावात्मक, द्रव्य सत्यता की दृष्टि से भावात्मक एवं बौद्धिक विवेचना की दृष्टि से अनिर्वचनीय मानता है। फिर भी उसकी व्याख्याओं में निर्वाण का भावात्मक या सत्तात्मक पक्ष अधिक उभरा है।

२. **सौत्रान्तिक सम्प्रदाय**—वैभाषिक के अनुसार यह मानते हुए भी कि निर्वाण संस्कारों का अभाव है, यह स्वीकार नहीं करता कि है कि असंस्कृत धर्म की कोई भावात्मक सत्ता होती है। इनके अनुसार केवल परिवर्तनशीलता ही तत्व का यथार्थ स्वरूप है। अतः सौत्रान्तिक निर्वाण की दशा में किसी असंस्कृत अपरिवर्तनशील नित्य तत्व की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। उनकी मान्यता में ऐसा करना बुद्ध के अनित्यवाद और क्षणिकवाद की अवहेलना करना है। प्रो० शरवात्स्की के अनुसार सौत्रान्तिक सम्प्रदाय में "निर्वाण का अर्थ है जीवन की प्रक्रिया का समाप्त हो जाना जिसके पश्चात् ऐसा कोई जीवनशून्य तत्व शेष नहीं रहता है जिसकी जीवन प्रक्रिया समाप्त हो गई है।" निर्वाण क्षणिक चेतना प्रवाह का समाप्त हो जाना है जिसके समाप्त हो जाने पर कुछ भी अवशेष नहीं रहता। क्योंकि इनके अनुसार परिवर्तन ही सत्य है। परिवर्तनशीलता के अतिरिक्त तत्व की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। और निर्वाणदशा में परिवर्तनों की श्रृंखला समाप्त हो जाती है अतः उसके परे कोई सत्ता शेष नहीं रहती है। इस प्रकार सौत्रान्तिक निर्वाण मात्र अभावात्मक अवस्था है। वर्तमान में बर्मा और लंका के बौद्ध निर्वाण को अभावात्मक अनस्तित्व के रूप में देखते हैं। निर्वाण से भावात्मक, अभावात्मक और अनिर्वचनीय पक्षों की दृष्टि से विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सौत्रान्तिक विचारणा निर्वाण के अभावात्मक पक्ष पर अधिक बल देती है। यद्यपि इस प्रकार सौत्रान्त्रिक सम्प्रदाय का निर्वाण का अभावात्मक दृष्टिकोण जैन विचारणा के विरोध में जाता है, लेकिन सौत्रान्तिक में भी एक ऐसा उपसंप्रदाय था जिसके अनुसार निर्वाण पूर्णतया अभावात्मक दशा नहीं था। उनके अनुसार निर्वाण अवस्था में भी विशुद्ध चेतना पर्यायों का प्रवाह रहता है। यह दृष्टिकोण जैन विचारणा की इस मान्यता के निकट आता है जिसके अनुसार निर्वाण की अवस्था में भी आत्मा में परिणामीपन बना रहता है अर्थात् मोक्षदशा में आत्मा में चेतन्य ज्ञान धारा सतत रूप से प्रवाहित होती रहती है।

३. **विज्ञानवाद : योगाचार**—महायान के प्रमुख ग्रंथ लंकावतार के अनुसार निर्वाण सप्त प्रवृत्तिविज्ञानों की अप्रवृत्तावस्था

२३. द्रव्यं सत् प्रतिसंख्या निरोधः सत्यचतुष्टय—निर्देश-निर्द्दिष्टत्वात् मार्ग सत्यैव इति वैभाषिकाः —यशोमित्र—अभिधर्म कोष व्याख्या पृष्ठ १७

२४. बुद्धिस्ट निर्वाण पृष्ठ २७

२५. आस्पेक्ट आफ महायान इन रिलेशन टू हीनयान पृष्ठ १६२

२६. सेंट्रल फिलासफी आफ बुद्धिज्म पृष्ठ २७२-७३

२७. बुद्धिस्ट फिलासफी आफ युनिवर्सल फ्लक्स पृष्ठ २५२

२८. (अ) ए कम्पेरेटिव स्टडी आफ दी कानसेप्ट आफ लीबरेशन इन इंडियन फिलासफी, पृष्ठ ६९
(ब) बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृष्ठ १४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, चित्तप्रवृत्तियों का निरोध है ।[29] स्थिरमति के अनुसार निर्वाण क्लेशावरण और ज्ञेयावरण का क्षय है ।[30] असंग के अनुसार निवृत्त चित्त (निर्वाण) अचित्त है, क्योंकि वह विषयों का ग्राहक नहीं है। वह अनुपलम्भ है क्योंकि उसका कोई बाह्य आलंबन नहीं है और इस प्रकार आलंबन रहित होने से वह लोकोत्तर ज्ञान है । दौष्ठुल्य अर्थात् आवरण (क्लेशावरण और ज्ञेयावरण) के नष्ट हो जाने से निवृत्तचित्त (आलयविज्ञान) परावृत नहीं होता, प्रवृत्त नहीं होता ।[31] वह अनावरण अनास्वधातु है, लेकिन असंग केवल इस निषेधात्मक विवेचन से संतुष्ट नहीं होते, वे निर्वाण की अनिर्वचनीय और भावात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं । निर्वाण अचिन्त्य है, क्योंकि तर्क से उसे जाना नहीं जा सकता लेकिन अचिन्त्य होते हुए भी वह कुशल है, शाश्वत है, सुखरूप है, विमुक्तकाय है और धर्मास्य है ।[32] इस प्रकार विज्ञानवादी मान्यता में निर्वाण की अभावपरक और भावपरक व्याख्याओं के साथ-साथ उनकी अनिर्वचनीयता को भी स्वीकार किया गया है। वस्तुतः निर्वाण के अनिर्वचनीय स्वरूप के विकास का श्रेय विज्ञानवाद और शून्यवाद को ही है । लंकावतार सूत्र में निर्वाण के अनिर्वचनीय स्वरूप का सर्वोच्च विकास देखा जा सकता है । लंकावसूत्र के अनुसार निर्वाण विचार की कोटियों के परे है लेकिन फिर भी विज्ञानवाद-निर्वाण को उस आधार पर नित्य माना जा सकता है कि निर्वाण लाभ से उत्पन्न ज्ञान होता है ।

तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर विज्ञानवादी निर्वाण का जैन विचारणा में निम्न अर्थों में साम्य है । १. निर्वाण चेतना का अभाव नहीं है वरन् विशुद्ध चेतना की अवस्था है । २. निर्वाण समस्त संकल्पों का क्षय है वह चेतना की निर्विकल्पावस्था है । ३. निर्वाणावस्था में भी चैतन्य धारा सतत प्रवाहमान रहती है (आत्मपरिणामीपन) ।[33] यद्यपि डा. चन्द्रधर शर्मा ने आलय विज्ञान को अपरिवर्तनीय या कूटस्थ माना है लेकिन श्री बल्देव उपाध्याय उसे प्रवाहमान या परिवर्तनशील मानते हैं ।[34] ४. निर्वाणावस्था सर्वज्ञता की अवस्था है । जैन विचारणा के अनुसार उस अवस्था में केवलज्ञान और केवलदर्शन होते हैं । असंग ने महायान सूत्रालंकार में धर्मकाय जो निर्वाण की पर्याय-वाची है, को स्वाभाविक काय कहा है ।[35] जैन विचारणा भी मोक्ष को स्वभाव दशा कहता है । स्वाभाविक काय और स्वभावदशा अनेक अर्थों में अर्थसाम्य रखते हैं ।

शून्यवादः—बौद्ध दर्शन के माध्यमिक संप्रदाय में निर्वाण के अनिर्वचनीय स्वरूप का सर्वाधिक विकास हुआ है । जैन तथा अन्य दार्शनिकों ने शून्यता का अभावात्मक अर्थ ग्रहण कर माध्यमिक निर्वाण को अभावात्मक रूप में देखा है । लेकिन यह उस, संप्रदाय के दृष्टिकोण को समझने में सबसे बड़ी भ्रान्ति ही कही जा सकती है । माध्यमिक दृष्टि से निर्वाण अनिर्वचनीय है, चतुष्कोटि विनिर्मुक्त है, वही परम तत्व है । वह न भाव है, न अभाव है ।[36] यदि वाणी से उसका निर्वचन करना ही आवश्यक हो तो मात्र यह कहा जा सकता है कि निर्वाण अप्रहाण, असम्प्राप्त, अनुच्छेद, अशाश्वत, अनिरुद्ध, अनुत्पन्न है ।[37] निर्वाण को भाव रूप इसलिये नहीं माना जा सकता है कि भावात्मक वस्तु या तो नित्य होगी या अनित्य होगी । नित्य मानने पर निर्वाण के लिये प्रयासों का कोई अर्थ नहीं होगा । अनित्य मानने पर बिना, प्रयास ही मोक्ष होगा । निर्वाण को अभाव भी नहीं कहा जा सकता, अन्यथा तथागत के द्वारा उसकी प्राप्ति का उपदेश क्यों दियाजाता । निर्वाण को प्रहाण सम्प्राप्त भी नहीं कहा जा सकता अन्यथा निर्वाण कृतक एवं कालिक होगा और यह मानना पड़ेगा कि वह काल विशेष में उत्पन्न हुआ और यदि वह उत्पन्न हुआ तो वह जरामरण के समान अनित्य ही होगा । निर्वाण को उच्छेद या शाश्वत भी नहीं कहा जा सकता अन्यथा शास्ता के मध्यम मार्ग का उल्लंघन होगा और हम उच्छेदवाद या शाश्वतवाद की मिथ्यादृष्टि से ग्रसित होंगे । इसलिये माध्यमिक नय में निर्वाण भाव और अभाव दोनों नहीं है । वह तो सर्व संकल्पनाओं का क्षय है, प्रपंचोपशमता है ।

बौद्ध दार्शनिकों एवं वर्तमान युग के विद्वानों में बौद्ध दर्शन में निर्वाण के स्वरूप को लेकर जो मतभेद दृष्टिगत होता है, उसका मूल कारण बुद्ध द्वारा निर्वाण का विविध दृष्टिकोणों के आधार पर विवाद रूप से कथन किया जाना है । पाली-निकाय में निर्वाण के इन विविध स्वरूपों का विवेचन उपलब्ध होता है। उदान नामक लघु ग्रन्थ से ही निर्वाण के इन विविध रूपों को देखा जा सकता है ।

निर्वाण एक भावात्मक तथ्य है:—इस संबन्ध में बुद्ध वचन इस प्रकार हैं—"भिक्षुओ ! (निर्वाण) अजात, अमूर्त, अकृत, असंस्कृत है । भिक्षुओ ! यदि यह अजात, अमूर्त, अकृत, असंस्कृत नहीं होता, तो जात, मूर्त, और संस्कृत का व्युपशम नहीं हो सकता । भिक्षुओ ! क्योंकि वह अजात, अमूर्त, अकृत और असंस्कृत है इसलिये जात मूर्त, कृत और संस्कृत का व्युपशम जाना जाता

---

२९. लंकावतार सूत्र–२।६२

३०. क्लेशज्ञेयावरण प्रहाणमपि मोक्ष सर्वज्ञत्वाधिगमार्थम्–
—स्थिरमति त्रिंशिको वि. भा. पृ. १५

३१. अचित्तोऽनुपलम्भोऽसौ ज्ञानं लोकोचरं चतत । आश्रयस्यपरा-वृतिर्द्वियातदौष्ठुल्य हानितः–त्रिंशिका २९

३२. स एवानास्रवो धातुरचिन्त्यः कुशलो ध्रुवः–त्रिंशिका–३०

३३. ए क्रिटीकल सर्वे आफ इंडियन फिलासफी ।

३४. बौद्ध दर्शन मीमांसा

३५. महायान सूत्रालंकार ९।६०, महायान–शान्तिभिक्षु पृ. ७३

३६. भावाभाव परामर्शक्षयो निर्वाणं उच्यते । माध्यमिक कारिका वृत्ति पृ. ५२४, उद्धृत दी सेंट्रल फिलासफी आफ बुद्धिज्म
—टी. आर. व्ही. मूर्ती पृ. २७४

३७. अप्रहाणम सम्प्राप्त मनुच्छिन्नमशाश्वतम् ।
अनिरुद्ध मनुत्पन्नेम तन्निर्वाणमुच्यते ।।
—माध्यमिक कारिका वृत्ति पृ. ५२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है ।[38] धम्मपद[39] में निर्वाण को परम सुख, अच्युत स्थान, अमृत पद[40] कहा गया है जिसे प्राप्त कर लेने पर न च्युति का भय होता है न शोक होता है उसे शांत संसारोपशम एवं सुखपद भी कहा गया है ।[41] इतिवृत्तक में कहा गया वह ध्रुव, न उत्पन्न होने वाला, शोक और राग रहित है । सभी दुखों का वहाँ निरोध हो जाता है । वह संस्कारों की शान्ति एवं सुख है ।[42] आचार्य बुद्धघोष निर्वाण की भावात्मकता का समर्थन करते हुए विशुद्धि-मग्ग में लिखते हैं "निर्वाण नहीं है ऐसा नहीं कहना चाहिये । प्रमेव और जरामरण के अभाव से नित्य है । अशिथिल पराक्रम सिद्ध होने से विशेष ज्ञान के द्वारा प्राप्त किए जाने से और सर्वज्ञ के वचन तथा परमार्थ से निर्वाण अविद्यमान नहीं है ।[43]

निर्वाण की अभावात्मकता:—निर्वाण की अभावात्मकता के संबन्ध में उदान के रूप में निम्न बुद्ध वचन हैं "लोहे के घन की चोट पड़ने पर जो चिनगारियाँ उठती हैं सो तुरन्त बुझ जाती हैं—कहाँ गई कुछ पता नहीं चलता । इसी प्रकार काम बन्धन से मुक्त हो निर्वाण पाये हुए पुरुष की गति कोई भी पता नहीं लगा सकता ।[44]

शरीर छोड़ दिया, संज्ञा निरुद्ध हो गई,
सारी वेदनाओं को भी बिलकुल जला दिया ।
संस्कार शान्त हो गए, विज्ञान अस्त हो गया ।।[45]

लेकिन दीप शिखा और अग्नि के बुझ जाने अथवा संज्ञा के निरुद्ध हो जाने का अर्थ अभाव नहीं माना जा सकता । आचार्य बुद्धघोष विशुद्धिमग्ग में कहते हैं कि निरोध का वास्तविक अर्थ तृष्णाक्षय अथवा विराग है ।[46] प्रो. कीथ एवं प्रो. नलिनाक्ष दत्त अग्निवच्छगोत्तसुत्त के आधार पर यह सिद्ध करते हैं कि बुझ जाने का अर्थ अभावात्मकता नहीं है वरन् अस्तित्व की रहस्यमय अवर्णनीय अवस्था है । प्रोफेसर कीथ के अनुसार निर्वाण अभाव नहीं वरन् चेतना का अपने मूल (वास्तविक शुद्ध) स्वरूप में अवस्थित होना है । प्रोफेसर नलिनाक्ष दत्त के शब्दों में "निर्वाण की अग्नि शिखा के बुझ जाने से, की जाने वाली तुलना समुचित है क्योंकि भारतीय चिन्तन में आग के बुझ जाने से तात्पर्य उसके अनस्तित्व से न हो कर उसका स्वाभाविक शुद्ध अव्यक्त अवस्था में चला जाना है जिसमें कि वह अपने दृश्य प्रगटन के पूर्व रही हुई थी । बौद्ध दार्शनिक संघभद्र का भी यही निरूपण है कि अग्नि की उपमा से हमको यह कहने का अधिकार नहीं है कि निर्वाण अभाव है ।[47]" मिलिन्द प्रश्न के अनुसार भी निर्वाण धातु अस्ति धर्मः (अत्थिधम्म) एकान्त सुख एवं अप्रतिभाग है उसका लक्षण स्वरूपतः नहीं बताया जा सकता किन्तु गुणतः दृष्टांत के रूप में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार जल प्यास को शान्त करता है निर्वाण त्रिविध तृष्णा को शान्त करता है । निर्वाण को अकृत कहने से भी उसकी एकान्त अभावात्मकता सिद्ध नहीं होती । आर्य (साधक) निर्वाण का उत्पाद नहीं करता, फिर भी वह उसका साक्षात्कार (साक्षीकरोति) एवं प्रतिलाभ (प्राप्नोति) करता है । वस्तुतः निर्वाण को अभावात्मकरूप में इसलिये कहा जाता है कि अनिर्वचनीय का निर्वचन करने में भावात्मक भाषा की अपेक्षा अभावात्मक भाषा अधिक संगत होती है ।

निर्वाण की अनिर्वचनीयता:—निर्वाण की अनिर्वचनीयता के सम्बन्ध में निम्न बुद्ध वचन उपलब्ध है—"भिक्षुओ ! न तो मैं उसे अगति और न गति कहता हूं, न स्थिति और न च्युति कहता हूँ, उसे उत्पत्ति भी नहीं कहता हूँ । वह न तो कहीं ठहरा है न प्रवर्तित होता है और न उसका कोई आधार है । यही दुःखों का अन्त है ।"[48] भिक्षुओ ![49] अनन्त का समझना कठिन है, निर्वाण का समझना आसान नहीं है । ज्ञानी की तृष्णा नष्ट हो जाती है उसे (रागादिक्लेश) कुछ नहीं है ।[50] जहाँ (निर्वाण) जल, पृथ्वी, अग्नि और वायु नहीं ठहरती, वहाँ न तो शुक्र और न आदित्य प्रकाश करते हैं । वहाँ चन्द्रमा की प्रभा नहीं है, न वहाँ अंधकार ही होता है । जब क्षीणश्रव भिक्षु अपने आपको जान लेता है तब रूप-अरूप, तथा सुख-दुख से छूट जाता है ।[51] उदान का यह वचन हमें गीता के उस कथन की याद दिला देता है जहाँ श्री कृष्ण कहते हैं कि जहाँ न पवन बहता है, न चद्र, सूर्य, प्रकाशित होते हैं, जहाँ पर पुनः पुनः इस संसार में आया नहीं जाता वही मेरा (आत्मा का) परमधाम (स्वस्थान) है ।

---

३८. उदान ८।३ पृ. ११०-१११ :ऐसा ही वर्णन इतिवृत्तक २।२।६ में भी है ।

३९. धम्मपद २०३,२०४ (निर्वाण परम सुखं)

४०. अमतं सन्ति निब्वाण पदमत्वुतं—सुत्त-निपात-पारायण वग्ग

४१. धम्मपद ३६८

४२. इत्तिवुत्तक २।२।६

४३. विशुद्धिमग्ग (परिच्छेद १६ भाग २ पृ. ११९ से १२१) हिन्दी अनुवाद भिक्षु धर्मरक्षित ।

४४. उदान पाटलिग्राम वर्ग ८।१०

४५. उदान ८।९

४६. विशुद्धिमग्ग परिच्छेद ८ एवं १६

४७. बौद्ध धर्म दर्शन पृ. २९४ पर उद्धृत

४८. उदान ८।१

४९. मूल पाली में यहाँ पाठान्तर है—तीन पाठ मिलते हैं । १. अनत्तं २. अनतं ३. अनन्तं । हमने यहाँ "अनन्तं" शब्द का अर्थ ग्रहण किया है । आदरणीय काश्यपजी ने अनत (अनात्म) पाठ को अधिक उपयुक्त माना है लेकिन अट्कथा में दोनों ही अर्थ लिए गये हैं ।

५०. उदान ८।३

५१. यत्थ आपो न पठवी तेजो वायो न गाधति ।
न तथ्य सुक्का जोवन्ति आदिच्चो न प्पकासति ।।
न तथ्य चन्दिमा भाति तमो तथ्य न विज्जति । उदान १।१०

तुलना कीजिए—न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावक ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।। गीता १५।६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध निर्वाण की यह विशद विवेचना हमें इस निष्कर्ष पर ले जाती है कि प्रारंभिक बौद्ध दर्शन का निर्वाण अभावात्मक तथ्य नहीं था। इसके लिये निम्न तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

१. निर्वाण यदि अभाव मात्र होता तो वह तृतीय आर्य सत्य कैसे होता ? क्योंकि अभाव आर्यचित्त का आलंबन नहीं हो सकता।

२. तृतीय आर्य सत्य का विषय द्रव्य सत् नहीं है तो उसके उपदेश का क्या मूल्य होगा ?

३. यदि निर्वाण मात्र अभाव है तो उच्छेद दृष्टि सम्यक् दृष्टि होगी--लेकिन बुद्ध ने तो सदैव ही उच्छेद दृष्टि को मिथ्या-दृष्टि कहा है।

४. महायान की धर्मकाय की धारणा और उसकी निर्वाण से एकरूपता तथा विज्ञानवाद के आलय-विज्ञान की धारणा निर्वाण की अभावात्मक अवस्था के विपरीत पड़ते हैं। अतः निर्वाण का तात्विक स्वरूप अभाव सिद्ध नहीं होता है। उसे अभाव या निरोध कहने का तात्पर्य यही है कि उसमें वासना या तृष्णा का अभाव है। लेकिन जिस प्रकार रोग का अभाव, अभाव मात्र है फिर भी सद्भूत है, उसे आरोग्य कहते हैं। उसी प्रकार का तृष्णा अभाव भी सद्भूत है, उसे सुख कहा जाता है। दूसरे उसे अभाव इसलिये भी कहा जाता है कि साधक में शाश्वतवाद की मिथ्यादृष्टि भी उत्पन्न नहीं हो। राग का प्रहाण होने से निर्वाण में मैं (अतः) और मेरापन (अत्ता) नहीं होता इसी दृष्टिकोण के आधार पर उसे अभाव कहा जाता है। निर्वाण राग का, अंह का पूर्ण विगलन है। लेकिन अहं या ममत्व की समाप्ति को अभाव नहीं कहा जा सकता। निर्वाण की अभावात्मक कल्पना अनत्त का गलत अर्थ समझने से उत्पन्न हुई है। बौद्ध दर्शन में अनात्म (अनत्त) शब्द आत्म (तत्व) का अभाव नहीं बताता वरन् यह बताता है कि जगत में अपना या मेरा कोई नहीं है। अनात्म का उपदेश आसक्ति (ममत्व बुद्धि) के प्रहाण के लिये, तृष्णा के क्षय के लिये है। निर्वाण "तत्व" का अभाव नहीं वरन् अपनेपन या अहं का अभाव है। वह वैयक्तिकता का अभाव है, व्यक्तित्व का नहीं। अनत्त (अनात्मा) वाद की पूर्णता यह बताने में है कि जगत में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे मेरा या अपना कहा जा सके। सभी अनात्म हैं इस शिक्षा का सच्चा अर्थ यही है कि मेरा कुछ भी नहीं है। क्योंकि जहाँ मेरापन (अत्त भाव) आता है वहाँ राग एवं तृष्णा का उदय होता है। स्व की पर में अवस्थिति होती है, आत्मदृष्टि (ममत्व) उत्पन्न होती है। लेकिन यही आत्मदृष्टि स्व का पर में अवस्थित होना अथवा राग एवं तृष्णा की वृत्ति बन्धन है, जो तृष्णा है वही राग है और जो राग है वही अपनापन है। निर्वाण में तृष्णा का क्षय होने से राग नहीं होता, राग नहीं होने से अपनापन (अत्ता) भी नहीं होता। बौद्ध निर्वाण की अभावात्मकता का सही अर्थ इस अपनेपन का अभाव है, वह तत्व का अभाव नहीं है वस्तुतः तत्व लक्षण की दृष्टि से निर्वाण एक भावात्मक अवस्था है। मात्र वासनात्मक पर्यायों के अभाव के कारण ही वह अभाव कहा जाता है। अतः प्रोफेसर कीथ और नलिनाक्ष दत्त की यह मान्यता कि बौद्ध निर्वाण अभाव नहीं है, बौद्ध विचारणा की मूल विचारदृष्टि के निकट ही है। यद्यपि बौद्ध निर्वाण एक भावात्मक तथ्य है फिर भी भावात्मक भाषा उसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं है क्योंकि भाव किसी पक्ष को बताता है और पक्ष के लिये प्रतिपक्ष की स्वीकृति अनिवार्य है जब कि निर्वाण तो पक्षातिक्रान्त है। निषेधमूलक कथन की यह विशेषता होती है कि उसके लिये किसी प्रतिपक्ष की स्वीकृति आवश्यक नहीं होती अतः अनिर्वचनीय का निर्वचन करने में निषेधात्मक भाषा का प्रयोग ही अधिक समीचीन है। इस निषेधात्मक विवेचनशैली ने निर्वाण की अभावात्मक कल्पना को अधिक प्रबल बनाया है। वस्तुतः निर्वाण अनिर्वचनीय है।

□

(अपरिग्रह : एक अनुचिन्तन.....पृष्ठ ४० का शेष)

सकता है। बलप्रयोग से नहीं परन्तु स्वेच्छापूर्वक संग्रहित वस्तु का योग्य वितरण करना ही अपरिग्रहवाद है। आज की सुख-सुविधाएँ मुट्ठी भर लोगों पास एकत्र हो गई हैं और शेष समाज अभावग्रस्त है। न उसकी भौतिक उन्नति हो रही है और न आध्यात्मिक। सब ओर भुखमरी की महामारी जनता का सर्वग्रास करने के लिये मुंह फैलाये हुवे है। यदि प्रत्येक मनुष्य के पास केवल उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप ही सुख-सुविधा की सामग्री रहे तो कोई मनुष्य भूखा, गृहहीन एवं असहाय न रहे। भगवान् महावीर का यह अपरिग्रह सिद्धान्त ही मानव जाति का कल्याण कर सकता है। भूखी जनता के आँसू पोंछ सकता है। यह सिद्धान्त आधुनिक युग की ज्वलंत समस्याओं का सामयिक सर्वोत्तम समाधान है। विश्व शान्ति के लिये इससे बढ़ कर और कोई साधन नहीं है।

○

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org